हरि राम

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

9 अगस्त, 2004

[न्यामूर्ति अरिजीत पासायत और सी. के. ठक्कर]

भारतीय दंड संहिता, 1860:

धारा 34-उद्देश्य और उद्देश्य-निर्णीत धारा 34 केवल साक्ष्य का एक नियम है और एक ठोस अपराध नहीं बनाता है-विशिष्ट इस खंड की विशेषता कार्य में सहभागिता का तत्व है-इसे लागू करने के लिए सामान्य आशय का अस्तित्व आवश्यक तत्व है। इस धारा का उद्देश्य एक ऐसे मामले को पूरा करना है जिसमें किसी पक्ष के व्यक्तिगत सदस्यों के कार्यों और उनमें से प्रत्येक के लिए गए भाग में अंतर करना मुश्किल हो सकता है।

आपराधिक विचारण गवाह-पीड़ितों के रिश्तेदार द्वारा अभिसाक्ष्य- साक्ष्यिक मूल्य-निर्णीत- संबंध एक गवाह की विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाला कारक नहीं है-पीड़ित का एक रिश्तेदार एक वास्तविक अपराधी को नहीं छिपाएगा और एक निर्दोष व्यक्ति के खिलाफ आरोप नहीं लगाएगा- पीड़ितों के साथ कोई संबंध नहीं रखने वाले गवाहों पर अधिक जोर देने के परिणामस्वरूप अक्सर आपराधिक न्याय नहीं हो पाता है। इसलिए, ऐसे स्वाभाविक गवाहों की उपेक्षा करना और उन बाहरी लोगों पर जोर देना अव्यवहारिक होगा जिन्होंने घटना को घटित होते नहीं देखा होगा।

शब्द और वाक्यांशः

"सामान्य आशय"- का अर्थ-दंड संहिता, 1860 की धारा 34 के संदर्भ में।

अपीलार्थी-अभियुक्त पर धारा 302 सपठित धारा 34 भारतीय दंड संहिता, 1860 के तहत अपराध का मुकदमा चलाया गया था। निचली अदालत ने पीडब्लू 1 और 2, जो चश्मदीद गवाह थे, के साक्ष्य पर भरोसा करते हुए अपीलार्थी को दोषी ठहराया। उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि की पुष्टि की। अतः यह अपील प्रस्तुत की गई।

अपीलार्थी की ओर से यह तर्क दिया गया कि अपराध के कथित अपराध में अपीलार्थी की कोई भूमिका नहीं थी और, इसलिए, आई. पी. सी. की धारा 34 लागू नहीं की जा सकती थी; और यह कि पीडब्लू 1 और 2 मृतक के रिश्तेदार थे और स्वतंत्र गवाह नहीं थे।

याचिका खारिज करते हुए कोर्ट ने अभिनिर्धारित किया

1.1 आपराधिक कार्य करने में संयुक्त दायित्व के सिद्धांत के आधार पर भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 34 अधिनियमित की गई है। यह धारा केवल साक्ष्य का नियम है और कोई ठोस या मूल अपराध नहीं बनाती। इस प्रावधान की विशिष्ट विशेषता कार्य में भागीदारी का तत्व है। कई व्यक्तियों द्वारा किए गए आपराधिक कृत्य के दौरान दूसरे द्वारा किए गए अपराध के लिए एक व्यक्ति का दायित्व धारा 34 के तहत उत्पन्न होता है, यदि ऐसा आपराधिक कृत्य अपराध करने में शामिल व्यक्तियों के सामान्य आशय को आगे बढ़ाने के लिए किया जाता है। सामान्य आशय का प्रत्यक्ष प्रमाण शायद ही कभी उपलब्ध होता है और इसलिए, ऐसे आशय का अनुमान केवल मामले के सिद्ध तथ्यों और सिद्ध परिस्थितियों से प्रकट होने वाली परिस्थितियों से ही लगाया जा सकता है। सामान्य आशय के आरोप को सामने लाने के लिए, अभियोजन पक्ष को साक्ष्य, चाहे प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य, द्वारा यह स्थापित करना होगा कि सभी आरोपी व्यक्तियों के मन में उस अपराध को करने की योजना या सहमति थी जिसके लिए उन पर आरोप लगाया गया है। धारा 34, चाहे यह पूर्व-नियोजित हो या क्षणिक आवेग पर;

लेकिन यह आवश्यक रूप से अपराध के घटित होने से पहले होना चाहिए। धारा की वास्तविक अंतर्वस्तु यह है कि यदि दो या दो से अधिक व्यक्ति जानबूझकर संयुक्त रूप से कोई कार्य करते हैं, तो कानून में स्थिति बिल्कुल वैसी ही है जैसे कि उनमें से प्रत्येक ने इसे व्यक्तिगत रूप से स्वयं किया हो।

1.2. किसी अपराध में भाग लेने वालों के बीच एक सामान्य आशय का अस्तित्व इस धारा की प्रयोज्यता के लिए आवश्यक तत्व है। यह आवश्यक नहीं है कि कई व्यक्तियों पर किसी अपराध को संयुक्त रूप से करने के आरोप लगाए गए हों तो उनके कार्य एक समान हों या समान रूप से समान हों। कार्य प्रकृति में भिन्न हो सकते हैं, लेकिन इस प्रावधान को आकृष्ट करने के लिए उन्हें एक ही सामान्य आशय से क्रियान्वित किया जाना चाहिए।

अशोक कुमार बनाम पंजाब राज्य, ए. आई. आर. (1977) एस. सी. 109 की विधि पर भरोसा किया गया।

2. यह धारा "सभी का सामान्य आशय" के बारे में नहीं कहती है, न ही यह "और सभी के लिए समान आशय" कहती है। धारा 34 के प्रावधानों के तहत दायित्व का सार एक सामान्य आशय के अस्तित्व में पाया जाता है जो आरोपी को ऐसे आशय को आगे बढ़ाने के लिए आपराधिक कृत्य करने के लिए प्रेरित करता है। धारा 34 में प्रतिपादित सिद्धांतों के अनुप्रयोग के परिणामस्वरूप, जब किसी अभियुक्त को धारा 34 के साथ पढ़ी जाने वाली धारा 302 के तहत दोषी ठहराया जाता है, तो कानून में इसका मतलब है कि अभियुक्त उस कार्य के लिए, जिसके कारण मृतक की मृत्यु हुई, उसी प्रकार उत्तरदायी है, जैसे कि यह अकेले उसके द्वारा किया गया था। इस प्रावधान का उद्देश्य ऐसे मामले को पूरा करना है जिसमें किसी पार्टी के अलग-अलग सदस्यों के कृत्यों के बीच अंतर करना मुश्किल हो सकता है जो सभी के सामान्य आशय को आगे

बढ़ाने में कार्य करते हैं या यह साबित करना मुश्किल हो सकता है कि उनमें से प्रत्येक ने क्या भूमिका निभाई।

चौ. पुल्ला रेड्डी बनाम ए. पी. राज्य, ए. आई. आर. (1993) एस. सी. 1899 और अनिल शर्मा बनाम झारखंड राज्य, (2004) 5 एस. सी. सी. 679, पर निर्भरता जाहिर की।

महबूब शाह बनाम सम्राट, ए. आई. आर. (1945) पी. सी. 118, संदर्भित।

3.1. किसी गवाह की विश्वसनीयता को प्रभावित करने के लिए रिश्ता कोई कारक नहीं है। अक्सर ऐसा होता है कि कोई रिश्ता वास्तविक अपराधी को नहीं छुपाता और किसी निर्दोष व्यक्ति पर आरोप नहीं लगाता। गलत फंसाने की दलील दी गई तो उसका आधार स्थापित करना पड़ेगा। ऐसे मामलों में, अदालत को सावधानीपूर्वक दृष्टिकोण अपनाना होगा और यह पता लगाने के लिए सबूतों का विश्लेषण करना होगा कि क्या साक्ष्य ठोस और विश्वसनीय है।

दलीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, ए. आई. आर. (1953) एस. सी. 364; गुली चंद बनाम राजस्थान राज्य, (1974) 3 एस. सी. सी. 698 और वादिवेलु थेवर बनाम मद्रास, ए. आई. आर. (1957) एस. सी. 614 की स्थिति पर भरोसा किया।

3.2. इस आधार पर, कि गवाह एक करीबी रिश्तेदार है और परिणामस्वरूप एक पक्षपाती गवाह है, उस पर भरोसा नहीं किया जाना चाहिए, कोई सार नहीं है।

दलीप सिंह बनाम। पंजाब राज्य, ए. आई. आर. (1953) एस. सी. 364 और मसाल्टी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ए. आई. आर. (1956) एस. सी. 202 की स्थिति पर भरोसा किया।

रामेश्वर बनाम. राजस्थान राज्य, ए. आई. आर. (1952) एस. सी. 54, उद्धृत किया गया है।

4. गवाहों का पीड़ितों से कोई संबंध न होने अर्थात पीड़ित के गैर रिश्तेदार के गवाह होने पर अत्यधिक जोर देने के परिणामस्वरूप अक्सर आपराधिक न्याय का हनन हो जाता है। जब किसी आवासीय घर में या उसके आस-पास कोई घटना घटती है तो सबसे स्वाभाविक गवाह उस घर के निवासी होंगे। ऐसे प्राकृतिक गवाहों को नजरअंदाज करना और बाहरी लोगों पर जोर देना अव्यावहारिक होगा जिन्होंने कुछ भी नहीं देखा होगा। यदि न्यायालय ने सबूतों से या यहां तक कि अनुसंधान के अभिलेख से भी यह पाया है कि किसी अन्य स्वतंत्र व्यक्ति ने संबंधित घटना से जुड़ी किसी घटना को देखा है, तो अभियोजन गवाह के रूप में ऐसे व्यक्ति की परीक्षा न करवाने के खिलाफ प्रतिकूल टिप्पणियां करना औचित्यपूर्ण है। अन्यथा, केवल अनुमानों के आधार पर अदालत को अभियोजन पक्ष के गवाहों के रूप में इलाके के अन्य व्यक्तियों की परीक्षा नहीं करने के लिए अभियोजन पक्ष को फटकार नहीं लगानी चाहिए। अभियोजन पक्ष से केवल उन लोगों की जांच करने की उम्मीद की जा सकती है जिन्होंने घटनाओं को देखा है, न कि उन लोगों से जिन्होंने इसे नहीं देखा है, हालांकि पड़ोस अन्य निवासियों से भरा भी हो सकता है।

राजस्थान राज्य बनाम तेजा राम, आकाशवाणी (1999) एससी 1776 और सुचा सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2003) 7 एस. सी. सी. 643, का अनुसरण किया गया।

आपराधिक अपीलीय अधिकारिता: आपराधिक अपील सं 827/2004

आपराधिक अपील संख्या 2098/1981 में उड़ीसा उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांकित 11.7.2003 से।

अपीलार्थी की ओर से सी. पी. शर्मा, श्रीमती गीता शर्मा, श्रीमती वंदना सिंह और श्रीमती संतोष सिंह।

उत्तरदाताओं के लिए रवि पी. मेहरोत्रा और गर्वेश काबरा।

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अरिजीत पासायत के द्वारा दिया गया था।

अपील की अनुमति न्यायमूर्ति अरिजीत पासायत द्वारा दी गई।

अपीलार्थी को धारा 302 सपठित धारा 34 भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में 'आई. पी. सी.') के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया गया था। और विद्वान अतिरिक्तजिला और सत्र न्यायाधीश, बरेली द्वारा आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। इस तरह की दोषसिद्धि और सजा की पुष्टि इलाहाबाद उच्च न्यायालय के आलौच्य निर्णय से हुई।

संक्षेप में अभियोजन पक्ष का संस्करण इस प्रकार हैः

कुन्दन लाल (बाद में 'मृतक' कहा गया है) बरेली जिले के सिरौरा गांव का निवासी था, अपीलकर्ता हरि राम और सह-अभियुक्त परमानंद के पिता गेंदन लाल का सगा भाई था। गेंदन लाल का एक और बेटा हरद्वारी था। मृतक को कोई पुरुष संतान नहीं थी और उसकी श्रीमती नन्ही नाम की केवल एक बेटी थी। नन्ही, जिसका विवाह अजुधिया (पीडब्लू1) से हुआ था। मृतक के पास करीब 34 बीघे कृषि भूमि थी, जो उसके और गेंदन लाल के नाम पर संयुक्त रूप से दर्ज थी, लेकिन दोनों ने आपसी सहमति से अपना-अपना हिस्सा अलग कर लिया था। मृतक ने अपनी जमीन फसल बटाई पर दी थी। चूंकि मृतक के पास कोई पुरुष संतान नहीं थी, इसलिए अपीलकर्ता और सह-अभियुक्त परमानंद उसकी जमीन हड़पना चाहते थे और उसे धमकी भी दी थी कि अगर उसने अपनी जमीन उनके पक्ष में हस्तांतरित नहीं की, तो वे उसे मार देंगे। 01.4.1980 को लगभग 12.30 बजे अपराह्न परमानंद ने फिर से मृतक को धमकी दी कि वह अपनी जमीन उसके पक्ष में कर दे अन्यथा वह उसे मार डालेगा। मृतक ने उक्त घटना की रिपोर्ट थाना-भोजीपुरा में दर्ज करायी थी।

ग्राम सिरुरा में अपनी जान को खतरा होने की आशंका से मृतक अपनी बेटी के घर ग्राम आशपुर आ गया था और 1.4.1980 के बाद से वहीं रह रहा था। करीब एक माह बाद गेंदन लाल मृतक के पास गांव आशपुर आया और अपने बेटों की गलती के लिए माफी मांगी और उसे अपने गांव चलने के लिए कहा, लेकिन मृतक ने ऐसा करने से इनकार कर दिया तब गेंदन लाल ने उससे अपनी जमीन फसल हिस्सेदारी के आधार पर देने को कहा। इस पर मृतक राजी हो गया और उसने अपनी जमीन गेंदन लाल को दे दी। इसके बाद गेंदन लाल ने अपने हिस्से का गेहूं मृतक को भेज दिया था।

दिनांक 12.11.1980 को यानी इस मामले की घटना की तारीख से एक दिन पहले, अपीलकर्ता का भाई हरद्वारी सुबह लगभग 10.00 बजे ग्राम आशपुर में मृतक के पास आया और उसे अपने हिस्से का धान लेने के लिए अपने घर जाने के लिए कहा। मृतक इस पर सहमत हो गया और कहा कि वह अगले दिन आएगा। दिनांक 13.11.1980 को सुबह लगभग 8.00 बजे मृतक अजुधिया (पीडब्लू1) और मंगली (पीडब्लू2) के साथ एक बैलगाड़ी में ग्राम सिरौरा के लिए निकले और वे अपीलकर्ता और परमानंद की चौपाल पर पहुंचे जिन्होंने मृतक को धान लेने के लिए खलिहान जाने के लिए कहा। मृतक अपीलकर्ता और परमानंद के साथ-साथ अजुधिया (पीडब्लू 1) और मंगली (पीडब्लू 2) के साथ खलिहान के लिए रवाना हुआ। जब वे ज्वार, अरहर और ज्वार पटसन के बीच गांव की आबादी के पश्चिम में लगभग एक फर्लांग की दूरी पर पहुंचे तो अपीलकर्ता ने अपनी कमर से एक देशी पिस्तौल निकाली और अजुधिया (पीडब्लू 1) और मंगली (पीडब्लू 2) की ओर इशारा करते हुए उन्हें वापस जाने के लिए कहा। डर के मारे अजुधिया और मंगली लगभग 8-10 कदम पीछे हट गये। अपीलकर्ता ने मृतक को रोक दिया। तभी परमानंद ने अपनी कमर से हंसिया निकाल कर उसके पेट पर वार कर दिया. जब अजुधिया (पीडब्लू1) और मंगली (पीडब्लू2) ने शोर मचाने की कोशिश की, तो अपीलकर्ता ने पिस्तौल के बल पर उन्हें फिर से धमकी दी कि उन्हें

अलार्म नहीं बजाना चाहिए। मृतक नीचे गिर गया और उसकी मौके पर ही मौत हो गई। अजुधिया (पीडब्लू1) गांव के प्रधान के पास आया और पूरी घटना बताई। गांव के लोग भी वहां जमा हो गये। इसके बाद उन्होंने उससे रिपोर्ट दर्ज कराने को कहा।

अजुधिया (पीडब्ल्यू) 1 की चिक एफआईआर हेड कांस्टेबल मंडन मोहन चौबे द्वारा तैयार की गई थी, जिन्होंने जीडी रिपोर्ट में इसका अंकन किया था और परमानंद और हरि राम दोनों के खिलाफ आईपीसी की धारा 302 के तहत मामला दर्ज किया था।

अभियुक्तगण के विरुद्ध आरोप-पत्र पेश किया गया और उन पर अभियोजन चलाया गया। अभियोजन मुख्य रूप से पी.डब्ल्यू के 1 और 2 की साक्ष्यों पर निर्भर था जिन्हें चश्मदीद गवाह बताया गया। उन्हें विश्वसनीय, विश्वसनीय पाया गया और उनके कथन को ठोस माना गया। आरोपी परमानंद को आईपीसी की धारा 302 के तहत दंडनीय अपराध का दोषी पाया गया, जबकि अपीलकर्ता को आईपीसी की धारा 302 सपठित धारा 34 के तहत दंडनीय अपराध का दोषी पाया गया। विचारण न्यायालय के फैसले की पुष्टि इलाहाबाद उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने आक्षेपित फैसले से की।

अपील के समर्थन में अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने तर्क प्रस्तुत किया कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत पृष्ठभूमि परिदृश्य यह नहीं दर्शाता है कि अपीलकर्ता की कथित अपराध में कोई भूमिका थी और इसलिए, उस पर धारा 34 लागू नहीं की जा सकती। यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि पी.डब्ल्यू. 1 और 2 मृतक से संबंधित थे और स्वतंत्र गवाह नहीं थे।

राज्य के विद्वान वकील ने निचली अदालतों के निर्णयों का समर्थन किया और तर्क प्रस्तुत किया कि आरोप पूरी तरह से स्थापित हो गए हैं और आईपीसी की धारा 34 को सही तरीके से लागू किया गया है।

धारा 34 किसी आपराधिक कृत्य को करने में संयुक्त दायित्व के सिद्धांत पर अधिनियमित की गई है। यह धारा केवल साक्ष्य का नियम है और कोई ठोस या मूल अपराध नहीं बनाती। इस प्रावधान की विशिष्ट विशेषता कार्य में भागीदारी का तत्व है। कई व्यक्तियों द्वारा किए गए आपराधिक कृत्य के दौरान दूसरे द्वारा किए गए अपराध के लिए एक व्यक्ति का दायित्व धारा 34 के तहत उत्पन्न होता है, यदि ऐसा आपराधिक कृत्य अपराध करने में शामिल व्यक्तियों के सामान्य आशय को आगे बढ़ाने के लिए किया जाता है। सामान्य आशय का प्रत्यक्ष प्रमाण शायद ही कभी उपलब्ध होता है और इसलिए, ऐसे आशय का अनुमान केवल मामले के सिद्ध तथ्यों और सिद्ध परिस्थितियों से प्रकट होने वाली परिस्थितियों से ही लगाया जा सकता है। सामान्य आशय के आरोप को सामने लाने के लिए, अभियोजन पक्ष को साक्ष्य, चाहे प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य, द्वारा यह स्थापित करना होगा कि सभी आरोपी व्यक्तियों के मन में उस अपराध को करने की योजना या सहमति थी जिसके लिए उन पर आरोप लगाया गया है। धारा 34, चाहे यह पूर्व-नियोजित हो या क्षणिक आवेग पर; लेकिन यह आवश्यक रूप से अपराध के घटित होने से पहले होना चाहिए। धारा की वास्तविक अंतर्वस्तु यह है कि यदि दो या दो से अधिक व्यक्ति जानबूझकर संयुक्त रूप से कोई कार्य करते हैं, तो कानून में स्थिति बिल्कुल वैसी ही है जैसे कि उनमें से प्रत्येक ने इसे व्यक्तिगत रूप से स्वयं किया हो। जैसा कि अशोक कुमार बनाम पंजाब राज्य(एआईआर 1977 एससी 109)[1] में अभिनिर्धारित किया गया। किसी अपराध में भाग लेने वालों के बीच एक सामान्य आशय का अस्तित्व इस धारा की प्रयोज्यता के लिए आवश्यक तत्व है। यह आवश्यक नहीं है कि कई व्यक्तियों पर किसी अपराध को संयुक्त रूप से करने के आरोप लगाए गए हों तो उनके कार्य एक समान हों या समान रूप से समान हों। कार्य प्रकृति में भिन्न हो सकते हैं, लेकिन इस प्रावधान को आकृष्ट करने के लिए उन्हें एक ही सामान्य आशय से क्रियान्वित किया जाना चाहिए।

जैसा कि धारा 34 मूल रूप में निम्नलिखित प्रकार से थी:

> "जब कोई आपराधिक कार्य कई व्यक्तियों द्वारा किया जाता है, तो उनमें से प्रत्येक व्यक्ति उस कार्य के लिए उसी तरह उत्तरदायी होता है जैसे कि वह कार्य अकेले उसके द्वारा किया गया हो।"

1870 में, इसमें "व्यक्तियों" शब्द के बाद और "प्रत्येक" शब्द से पहले "सभी के सामान्य आशय को आगे बढ़ाने में" शब्दों को शामिल करके संशोधन किया गया था, ताकि धारा 34 के उद्देश्य को स्पष्ट किया जा सके। यह स्थिति महबूब शाह बनाम सम्राट (एआईआर 1945 प्रिवी काउंसिल 118)[2] में स्पष्ट की गई थी।

यह धारा "सभी का सामान्य आशय" के बारे में नहीं कहती है, न ही यह "और सभी के लिए समान आशय" कहती है। धारा 34 के प्रावधानों के तहत दायित्व का सार एक सामान्य आशय के अस्तित्व में पाया जाता है जो आरोपी को ऐसे आशय को आगे बढ़ाने के लिए आपराधिक कृत्य करने के लिए प्रेरित करता है। धारा 34 में प्रतिपादित सिद्धांतों के अनुप्रयोग के परिणामस्वरूप, जब किसी अभियुक्त को धारा 34 के साथ पढ़ी जाने वाली धारा 302 के तहत दोषी ठहराया जाता है, तो कानून में इसका मतलब है कि अभियुक्त उस कार्य के लिए, जिसके कारण मृतक की मृत्यु हुई, उसी प्रकार उत्तरदायी है, जैसे कि यह अकेले उसके द्वारा किया गया था। इस प्रावधान का उद्देश्य ऐसे मामले को पूरा करना है जिसमें किसी पार्टी के अलग-अलग सदस्यों के कृत्यों के बीच अंतर करना मुश्किल हो सकता है जो सभी के सामान्य आशय को आगे बढ़ाने में कार्य करते हैं या यह साबित करना मुश्किल हो सकता है कि उनमें से प्रत्येक ने क्या भूमिका निभाई थी जैसा कि चौ. पुल्ला रेड्डी और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (एआईआर 1993 एससी 1899)[3] में संप्रेक्षित किया गया। धारा 34 लागू होगी,

भले ही विशेष अभियुक्त द्वारा स्वयं कोई चोट न पहुंचाई गई हो। धारा 34 लगाने के लिए अभियुक्त की ओर से कोई प्रत्यक्ष कृत्य दिखाना आवश्यक नहीं है।

उपर्युक्त स्थिति को हाल ही में अनिल शर्मा और अन्य बनाम झारखंड राज्य [2004 (5) एससीसी 679][4] में भी रेखांकित किया गया।

इस मामले के तथ्यों पर आईपीसी की धारा 34 स्पष्ट रूप से लागू होती है और सही ढंग से लागू की गई है।

यह दलील कि कोई स्वतंत्र गवाह नहीं है, कोई मायने नहीं रखता।

हम सर्वप्रथम अभियोजन पक्ष के संस्करण को आगे बढ़ाने के लिए गवाहों की हितबद्धता से संबंधित तर्क से निपटेंगे। किसी गवाह की विश्वसनीयता को प्रभावित करने के लिए रिश्ता कोई कारक नहीं है। अक्सर ऐसा होता है कि कोई रिश्ता वास्तविक अपराधी को नहीं छुपाता और किसी निर्दोष व्यक्ति पर आरोप नहीं लगाता। गलत फंसाने की दलील दी गई तो उसका आधार स्थापित करना पड़ेगा। ऐसे मामलों में, अदालत को सावधानीपूर्वक दृष्टिकोण अपनाना होगा और यह पता लगाने के लिए सबूतों का विश्लेषण करना होगा कि क्या साक्ष्य ठोस और विश्वसनीय है।

दलीप सिंह और अन्य बनाम वी. पंजाब राज्य (एआईआर 1953 एससी 364)[5] में इसे निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया है: -

> "एक गवाह को आम तौर पर स्वतंत्र माना जाता है जब तक कि वह उन स्रोतों से नहीं आते हैं है जिनके दागी होने की संभावना है और सामान्यतया इसका मतलब है जब तक कि गवाह के पास उसे झूठा फंसाने का कारण न हो, जैसे कि अभियुक्त से दुश्मनी, आमतौर पर निकट संबंध वास्तविक अपराधी को बचाने और एक निर्दोष व्यक्ति को फंसाने का अंतिम कारण हो सकता है. यह सच है, जब भावनाएं उच्च

चलती हैं और दुश्मनी का व्यक्तिगत कारण है, तब यह एक प्रवृत्ति है कि एक निर्दोष व्यक्ति को फंसाया जाए, जिसके खिलाफ एक गवाह को दोषी के साथ द्वेष या शिकायत है, लेकिन इस तरह के मामलों में आलोचना के लिए नींव रखी जानी चाहिए। इस प्रकार की आलोचना की नींव से परे केवल रिश्ते का एकमात्र तथ्य अक्सर सच्चाई की एक निश्चित गारंटी होती है. हालाँकि, हम किसी भी व्यापक सामान्यीकरण का प्रयास नहीं करते हैं. प्रत्येक मामला अपने तथ्यों पर निर्णीत होना चाहिए। हमारी टिप्पणियाँ केवल विवेक के एक सामान्य नियम के रूप में हमारे सामने आने वाले मामलों में अक्सर सामने आने वाले प्रश्नों को निर्णीत करने के लिए की जाती हैं। ऐसा कोई सामान्य नियम नहीं है। प्रत्येक मामले को अपने तथ्यों तक ही सीमित और शासित होना चाहिए।"

उपर्युक्त निर्णय का गुली चंद और अन्य बनाम राजस्थान राज्य (1974 (3) एससीसी 698)[6] में भी अनुसरण किया गया जिसमें वडिवेलु थेवर बनाम मद्रास राज्य(एआईआर 1957 एससी 614)[7] पर भी भरोसा किया गया था।

हम यह भी देख सकते हैं कि इस आधार पर कि गवाह एक करीबी रिश्तेदार है और परिणामस्वरूप एक पक्षपातपूर्ण गवाह है, उस पर भरोसा नहीं किया जाना चाहिए, इस बात में कोई बल नहीं है। इस सिद्धांत को दलीप सिंह के मामले (उपर्युक्त) में इस न्यायालय द्वारा पहले ही खारिज कर दिया गया था, जिसमें बार के सदस्यों के मन में व्याप्त इस धारणा पर आश्चर्य व्यक्त किया गया था कि रिश्तेदार स्वतंत्र गवाह नहीं थे। न्यायमूर्ति विवियन बोस, ने अवधारित किया कि:

"हम उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों की इस बात से सहमत होने में असमर्थ हैं कि दो चश्मदीद गवाहों की गवाही की संपुष्टि की आवश्यकता है। यदि इस तरह के अवलोकन की नींव इस तथ्य पर आधारित है कि गवाह महिलाएं हैं और सात पुरुषों का भाग्य उनकी साक्ष्य पर निर्भर है तो, हम ऐसे किसी नियम के बारे में नहीं जानते हैं। यदि यह इस आधार पर आधारित है कि उन गवाहों का मृतक से निकट संबंध है तो भी हम सहमत होने में असमर्थ हैं। यह कई आपराधिक मामलों में आम बात है और इस न्यायालय की एक अन्य पीठ ने रामेश्वर बनाम राजस्थान राज्य' (एआईआर 1952 एससी 54 पृष्ठ 59)[8] में इस पर विचार करने का प्रयास कर स्पष्ट किया है। हालाँकि, हम मानते हैं कि अगर अदालतों के निर्णयों में नहीं, तो वकील के तर्कों में किसी भी किसी हद तक यह दुर्भाग्य से अभी भी कायम है, "

फिर से मसाल्टी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (एआईआर 1965 एससी 202)[9] में इस न्यायालय ने कहा: (पी, 209-210 पैरा 14):

"लेकिन हमारा मानना है कि यह तर्क देना अनुचित होगा कि गवाहों द्वारा दिए गए साक्ष्य को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया जाना चाहिए कि यह पक्षपातपूर्ण या हितबद्ध गवाहों की साक्ष्य है..... ऐसे साक्ष्य को एकमात्र आधार पर कि, यह पक्षपातपूर्ण है, यांत्रिक रूप से अस्वीकार करना सदैव न्याय की विफलता का कारण बनेगा। साक्ष्य की कितनी विवेचना की जानी चाहिए, इसके बारे में कोई ठोस नियम नहीं बनाया जा सकता है। न्यायिक दृष्टिकोण को ऐसे सबूतों से निपटने में सतर्क रहना होगा; लेकिन यह दलील कि, ऐसे सबूतों को

पक्षपातपूर्ण होने के कारण अस्वीकार कर दिया जावे, इसे सही नहीं माना जा सकता।"

जैसा कि इस न्यायालय ने राजस्थान राज्य बनाम तेजा राम और अन्य (एआईआर 1999 एससी 1776)[10] में यह तय किया कि गवाहों का पीड़ितों से कोई संबंध न होने अर्थात पीड़ित के गैर रिश्तेदार के गवाह होने पर अत्यधिक जोर देने के परिणामस्वरूप अक्सर आपराधिक न्याय का हनन हो जाता है। जब किसी आवासीय घर में या उसके आस-पास कोई घटना घटती है तो सबसे स्वाभाविक गवाह उस घर के निवासी होंगे। ऐसे प्राकृतिक गवाहों को नजरअंदाज करना और बाहरी लोगों पर जोर देना अव्यावहारिक होगा जिन्होंने कुछ भी नहीं देखा होगा। यदि न्यायालय ने सबूतों से या यहां तक कि अनुसंधान के अभिलेख से भी यह पाया है कि किसी अन्य स्वतंत्र व्यक्ति ने संबंधित घटना से जुड़ी किसी घटना को देखा है, तो अभियोजन गवाह के रूप में ऐसे व्यक्ति की परीक्षा न करवाने के खिलाफ प्रतिकूल टिप्पणियां करना औचित्यपूर्ण है। अन्यथा, केवल अनुमानों के आधार पर अदालत को अभियोजन पक्ष के गवाहों के रूप में इलाके के अन्य व्यक्तियों की परीक्षा नहीं करने के लिए अभियोजन पक्ष को फटकार नहीं लगानी चाहिए। अभियोजन पक्ष से केवल उन लोगों की जांच करने की उम्मीद की जा सकती है जिन्होंने घटनाओं को देखा है, न कि उन लोगों से जिन्होंने इसे नहीं देखा है, हालांकि पड़ोस अन्य निवासियों से भी भरा हो सकता है। (देखें. सुच्चा सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य (2003 (7) एससीसी 643)[11]। यह अपील निराधार या गुणहीन है और खारिज करने योग्य है, जिसका हम निर्देश देते हैं।

अपील खारिज की गई।

1 अशोक कुमार बनाम पंजाब राज्य(एआईआर 1977 एससी 109)

2 महबूब शाह बनाम सम्राट (एआईआर 1945 प्रिवी काउंसिल 118)

3 चौ. पुल्ला रेड्डी और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (एआईआर 1993 एससी 1899)

4 अनिल शर्मा और अन्य बनाम झारखंड राज्य [2004 (5) एससीसी 679]

5 दलीप सिंह और अन्य बनाम वी. पंजाब राज्य (एआईआर 1953 एससी 364)

6 गुली चंद और अन्य बनाम राजस्थान राज्य (1974 (3) एससीसी 698)

7 वडिवेलु थेवर बनाम मद्रास राज्य(एआईआर 1957 एससी 614)

8 रामेश्वर बनाम राजस्थान राज्य' (एआईआर 1952 एससी 54 पृष्ठ 59)

9 मसाल्टी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (एआईआर 1965 एससी 202)

10 राजस्थान राज्य बनाम तेजा राम और अन्य (एआईआर 1999 एससी 1776)

11 सुच्चा सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य (2003 (7) एससीसी 643)

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी पुना राम गोदारा (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।